

मेराज

मौलाना सय्यद अख्तर अली तिलहरी साहिब

जनाबे ख़त्मी मरतबत से मुतअल्लिक़ वाकिअः—ए—मेराज भी जिसका फिलजुम्ला तफ़सील से तजकिरः पंद्रहवें पारे “सुब्हानललजी” में है। मुतअल्लिक़ः आयत का तर्जुमा हस्बे ज़ैल है।

तरजमः—मुनज्जः है पाक व पाकीज़ः है वो जात जो रातों रात अपने बन्दे को ‘मस्जिदुल हराम’ से ‘मस्जिदे अक़सा’ तक ले गयी जिसके हवाली (इर्द—गिर्द आस—पास) की खुद हम ने बरकत दी है ताकि हम उसको अपनी निशानियों में से बाज़ निशानियाँ दिखायें। बेशक वो बड़ा सुनने वाला और देखने वाला है।

वाकिय—ए—मिअ्राजे सरवरे काएनात इब्तिदा से अब तक अरबाबे फ़िक्र व नज़र के ज़ेरे—ए—गौर रहा है और इनमें से हर शख्स अपने ज़ौक की बिसात के मुताबिक इससे मुख्तलिफ़ गोशे पेशे निगाह रखते हुए बहस करता है ज़ाहिर है कि जिन अस्थाब ने आइम्म—ए—मासुमीन के इरशादात को नज़र अन्दाज़ करते हुवे उस आयते मुबारकः की तफ़सीरें लिखी हैं उनमें सिर्फ़ जदली रंग का अन्दाज़ा ज़रूर है लेकिन हकीकत के कैफ़े निशात उन में नहीं। ये खुसूसियत तो “अहले बैत” ही की तफ़सीरों में मिल सकती है।

मसलन ‘मस्जिदे अक़सा’ से क्या मुराद है क्या इस का इशारा “बैतुल मोक़द़दस” की तरफ़ है जैसा कि आम तौर से ख़याल किया जाता है। तफ़सीर कुम्मी में है कि जनाब

इमाम मुहम्मद बाकिर (अ०) मस्जिदुल हराम में रौनक अफ़रोज़ थे कि एक दफ़अः आपने आसमान की तरफ़ निगाह की। दूसरी मरतबः काबे की तरफ़ देखा और तीन मरतबः यही आयत तिलावत फ़रमाई। फिर इस्माअील जाफ़ी की तरफ़ मुतवज्जेह होकर इरशाद किया कि ऐ इराकी अहले इराक़ इस आयात के बारे में क्या कहते हो। उन्होंने अर्ज़ की कि ये लोग कहते हैं कि बारि—ए—तआला अपने बन्दः को मस्जिदुल मोक़द़दस तक ले गया। आप ने इरशाद किया कि ऐसा नहीं है जैसा वो कहते हैं बल्कि “इससे उस तक” ले गया और दूसरा लफ़ज़ “इस” को ज़बान पर जारी करते वक़्त अपने दस्ते मुबारक से आसमान की तरफ़ इशारा किया और फ़रमाया कि “इन दोनों माबैनों का नाम हरम है।”

जनाब इमाम जाफ़रे सादिक (अ०) से इसी किस्म की रिवायत मरवी है। आप से दरयाप्त किया गया था कि वो मस्जिदें कौन कौन सी हैं जिनके पाएनाम मख़सूस फ़ज़ीलतें हैं। मस्जिदुल हराम और मस्जिदुर् रसूल। किसी शख्स ने दरयाप्त किया। और “मस्जिदे अक़सा” फ़रमाया वो बाला—ए—समा (आसमान, ज़मीन के अिलावः कोई दूसरा कुरः है) जहाँ शबे मिअ्राज जनाब रसूले खुदा को ले गये थे। कहने वाले ने फिर कहा लोग तो ये कहते हैं कि “मस्जिदे अक़सा” से बैतुल मोक़द़दस मुराद है हज़रत ने इसके जवाब में इरशाद फ़रमाया कि उससे यानी बैतुल

मुकद्दस से तो मस्जिदे कूफः अफज़ल है। इन दोनों मासूमीन के जवाब के अन्दाज़ से मुझे तो ऐसा महसूस हो रहा है कि आप किसी और सय्यारे पर मस्जिदे अक्सा के वुजूद का इशारा कर रहे हैं। अगर “फलकियात” से ज़ौक रखने वाले मौजूदः हुकमा इन जवाते कुदसियः के इन इरशादात को पेशे नज़र रखते हुए मनज़िले फलकी की सैर करें और इजरामे समावी को अपने हकीमाना मुशाहिदात का मवारिद बनायें तो मुस्तक़बिले क़रीब में इसका भी इन्किशाफ़ हो सके कि किसी निज़ामे शमसी से मुतअल्लिक किसी सय्यारे पर ऐसी कोई मख़्लूक आबाद है जो मलकूत सिफ़ात और जिस की इबादतगाह मस्जिदे अक्सा या उसके किसी मुरादिफ़ के नाम से वहाँ मारुफ़ है जनाब ख़त्मी मरतबत के कदमे मुबारक जहाँ अपनी किसी मिअराज के सिलसिले में पहुँचे हैं।

“हयातुल कुलूब” जिल्द दोम से मालूम होता है कि मिअराज हिजरत से पहले वाकिअ हुई थी उन्होंने इस इहतिमाल को भी जायज करार दिया है। और मुम्किन है कि हिजरत के बाद वाकिअ हुई हो उसका वकूअ जब भी हुआ हो “हयातुल कुलूब” ने इसका दावा किया है कि अहादीस-ए-मुतवाति रह ख़्वाह वो शायीओ की हो ख़्वाह हज़रात अहले-ए-तसन्नन की इसी पर दलालत करती है कि आहज़रत की मिअराज जिस्मानी है। सिर्फ़ ‘रुही नहीं और फिर जागते में हुई है ख़्वाब में नहीं हुई है ओलमाए शीआ तो इस पर मुत्तफ़िक है कोद्मा में इन उमूर में इख़िलाफ़ नहीं हुवा। इब्ने बावैह शैख़ तबरसी वगैरा ने इसे साफ़ तौर से लिखा है। इमाम फ़ख़रुद्दीन राज़ी भी तफ़्सीरे कबीर में क़रीब-क़रीब यही लिखते हैं।

मुसलमानों के गरौहों में से अक्सर का इस पर इत्तेफ़ाक़ है कि रसूलुल्लाह को जिस्मानी मिअराज हुई अलबत्ता थोड़े से लोगों का ये ज़रूर ख़्याल है कि सिर्फ़ उनकी रूह को मिअराज हुवी।

फिर इन्हे इमाम राज़ी ने इस आयत की तफ़्सीर के सिलसिले में लिखा है कि “लफ़ज़-ए-“अब्द” हकीकतन रूह और जसद के मजमूए ही के लिये मुस्तामल है। इसके सबूत में दो आयतें भी पेश की हैं जाहिर है कि यहाँ “अब्द” से मुराद “रूह और जसद” का मजमूआ है इसी तरह सूरः जिन्न” में बारी अज्ज वो जल्ला इरशाद है,,, यहाँ भी “अब्द” से मुराद जिस्म (जसद) और रूह का मजमूआ ही है।

चूँकि मिअराज के वाकिअः में ख़्वाह को रफ़रफ़ के ज़रीअे से हो और ख़्वाह किसी और वासिते से इन्तिहाई सुरअत-ए-हरकत की साबिकः पड़ता है और इतनी सुरअत-ए-हरकत की बाज़ ज़ेहनों को उसके तसव्वुर करने में तअम्मुल होता है लिहाज़ा इस “तअम्मुल” को दफ़अ करने के लिये इमाम राज़ी को इस सुरअत-ए-हरकत का इम्कान-ए-अक्ली साबित करने की ज़रूरत महसूस हुवी और उन्होंने ये लिखा “इस कद्र तेज़ हरकत फी नफ़िसहि मुम्किन है और बारी जल शानहु तमाम मुम्किनात पर कुद़रत रखता है ये अक्ली काअिदः बयान करने बाद के बाज़ नक्ली वाकिआत से इसका इस्तिअबाद दूर किया है। उनका इरशाद है।

“तमाम जम्हूर-ए-मुसलमान इसका इक्रार करते हैं। कि जिब्रईल जिस्म रखते हैं। उनके नाज़िल होने का मत्लब यही है कि वो आलम-ए-अफ़लाक से मक्के में नज़ूल फ़रमाए। (बक़िया पेज नं० 15 पर.....)

वला यजरे मन्नकुम शनान कौम अला
अल्ला तादेलू आदेलू बोव अकरबो
लित्तकवा वत्तकुल्लाह (सूरए मायदा)

“यानी अगर तू गैर मुस्लिम के बारे में फैसला करे तो इन्साफ़ से फैसला कर। बेशक खुदा इन्साफ़ करने वालों को दोस्त रखता है।” इस्लामी क़ानून में शाह व गदा यकसौं हैसियत रखते हैं। चुनानचे हुजुरे अनवर^{स०अ०} ने फ़रमाया : व तक्वा लैस लाअहद अला अहद फ़ज़लुल आबेदीन (मिशकात) इसी का नतीजा यह है कि इस्लाम में सियासत, “हुसूले इक्तेदार के कामयाब ज़राय के इस्तेमाल” का नाम नहीं है बल्कि सियासत मुल्को मिल्लत के सही नज़्मो ज़ब्त और उमूरे खल्क (लोगों के काम) के बेहतरीन तरीक़े पर चलाने का नाम है। इस लिहाज़ से सियासी हुकूमत मज़हबी कयादत से अलग नहीं हो सकती और इसकी मिसाल खुद हज़रत पैग़म्बर^{स०अ०} की ज़ाते गिरामी है। मगर याद रखने की बात है कि हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा^{स०अ०} ने इस मुकम्मल इक्तेदार के बावजूद जिसके मातहत एलान कर दिया गया कि “उन को हर शख्स पर खुद उसकी ज़ात से ज़्यादा हक़ और इख्तियार है।” कभी अपने को बादशाह कहा या समझा जाना पसन्द नहीं किया बल्कि इससे इन्कार फ़रमाया। चुनौतचे एक मर्तबा एक शख्स आपकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ, जूँही आपके सामने खड़ा हुआ रोब से कांपने लगा। आपने फ़रमाया “अपने आपे में आओ मैं कोई बादशाह नहीं हूँ। मैं तो एक करशी औरत का बेटा हूँ जो शोरबे में रोटी भिगो कर (ग़रीबाना खाना) खाती थी।” (11) यह इसलिये था कि मुसलमानों में शरीयते इलाहिया की रहबरी से अलग हुक्मरान का तख़य्युल (ख़याल) पैदा न हो और सिवाए

(11) तबक़ात इब्ने सअद, कुम, जि/1, पेज/4

खुदा वन्दी इक्तेदार के किसी इक्तेदार के आगे मुसलमानों की गर्दने न झुकें।

(बक़िया पेज नं० 16 का.....)

“ जब उन का जिस्मानी होना इस कद्र सरीअ हरकत से मानेअ नहीं होता तो फिर रसूल के लिये जिस्मानी होने के साथ इतनी तेज सरीअ हरकत क्योंकर मुम्तना हो सकती है। इसके बाद ही उन्होंने लिखा कि बेशतर अरबाबे मिल्लत इब्लीस का वजूद तस्लीम करते हैं और ये मानते हैं कि बनी आदम के दिलों में वो वसवासों का इल्का करता है। और ये कि उसके लिये ये मुम्किन है कि वो मशरिफ़ से मगरिब तक बर्क़ रफ़्तारी से पहुंचे और बनी आदम के कुलूब में वसवसे पैदा करे। जाहिर है कि जब इब्लीस के लिये ये सुरअते रफ़तार जो बर्क़ व बद्र को भी पीछे छोड़ने वाली है मुम्किन है तो फिर अकाबिर—ए—अंबिया के लिये इसका जवाज़ तस्लीम करना बदरज—ए—ऊला ज़रूरी है। नक्ली हैसियत से इस तेज़ रफ़्तारी के सुबूत में तख़्त—ए—सुलैमान को पेशकिया जा सकता है और मलिक—ए—सबा बिलकीस के तख़्त को चश्मरवी जदन में आसिफ़ बरख़ियाने जिस तरह हज़रत सुलैमान के दरबार में मंगवा लिया है वो सब सरी से सरीअ तर हरकत के अमली हैसियत से मुम्किन मौजूद: एटमी दौर में इन इम्कानात की कोई ज़रूरत नहीं।

अब तो इस किस्म के वाकिआत आये दिन की चीज़े हो गयी है चाद तक इन्सानि सुर तो चन्द दिनों की बात है उसके बाद दूसरे सय्यारों तक पहुँचना सिर्फ़ तसव्वुर की दुनिया तक महदूद नहीं रहेगा। रूस और अमेरिका में सय्यारों तक पहुँचने की दौड़ जारी है। मेरा अकीदः है की इन्केशाफ़ात और ईजादात से मज़हब का तसव्वुरात को फायदा पहुँचेगा।